राजस्थानका युग-संस्थापक कथा-काव्यनिर्माता हरिभद्र

(स्व०) डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, एम०, ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट्, ज्योतिषाचार्य

युग प्रधान होनेके कारण हरिभद्रकी ख्याति उनकी अगणित साहित्यिक कृतियोंपर आश्रित है। राजस्थानका यह बहुत ही मेधावी और विचारक लेखक है। इनके धर्म, दर्शन, न्याय, कथा-साहित्य, योग एवं साधनादि सम्बन्धी विचित्र विषयोंपर गम्भीर पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि 'समराइच्च कहा' और 'धूर्त्ताख्यान' जैसे सरस, मनोरंजक आख्यान प्रधान ग्रन्थोंका रचयिता 'अनेकान्त-जयपताका' जैसे क्लिष्ट न्याय ग्रन्थका रचयिता है। एक ओर हृदयकी सरसता टपकती है, तो दूसरी ओर मस्तिष्ककी प्रौढ़ता।

हरिभद्रकी रचनाओंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि ये बहुमुखी प्रतिभाशाली अद्वितीय विद्वान् थे। इनके व्यक्तित्वमें दर्शन, साहित्य, पुराण, कथा, धर्म आदिका संमिश्रण हुआ है। ईनके ग्रन्थोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इनका जन्म चित्रकूट-चित्तौर राजस्थानमें हुआ था। ये जन्मसे ब्राह्मण थे और अपने अद्वितीय पांडित्यके कारण वहाँके राजा जितारिके राजपुरोहित थे। दीक्षाग्रहण करनेके पश्चात् इन्होंने राजस्थान, गुजरात आदि स्थानोंमें परिभ्रमण किया।

आचार्य हरिभद्रके जीवनप्रवाहको बदलनेवाली घटना उनके धर्मपरिवर्तनकी है। इनकी यह प्रतिज्ञा थी—'जिसका वचन न समझूँगा, उसका शिष्य हो जाऊँगा। एक दिन राजाका मदोन्मत्त हाथी आलान-स्तम्भको लेकर नगरमें दौड़ने लगा। हाथीने अनेक लोगोंको कुचल दिया। हरिभद्र इसी हाथीसे बचनेके लिए एक जैन उपाश्रयमें प्रविष्ट हुए। यहाँ याकिनी महत्तरा नामकी साध्वीको निम्नलिखित गाथाका पाठ करते हुए सुना।

चक्कीदुगं हरिपणगं चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव दु चक्की केसव चक्की य॥

इस गाथाका अर्थ उनकी समझमें नहीं आया और उन्होंने साध्वीसे इसका अर्थ पूछा। साध्वीने उन्हें गच्छपति आचार्य जिनभद्रके पास भेज दिया। आचार्यसे अर्थ सुनकर वे वहीं दीक्षित हो गये और बादमें अपनी विद्वत्ता और श्रेष्ठ आचारके कारण पट्टधर आचार्य हुए।

जिस याकिनी महत्तराके निमित्तसे हरिभद्रने धर्मपरिवर्तन किया था उसको उन्होंने अपनी धर्ममाताके समान पूज्य माना है और अपनेको याकिनीसूनु कहा है। याकोबीने 'समराइच्च कहा' की प्रस्तावनामें लिखा है—'आचार्य हरिभद्रको जैन धर्मका गम्भीर ज्ञान रखकर भी अन्यान्य दर्शनोंका भी इतना विशाल और तत्त्वग्राही ज्ञान था, जो उस कालमें एक ब्राह्मणको ही परम्परागत शिक्षाके रूपमें प्राप्त होना स्वाभाविक था, अन्यको नहीं।

समय

हरिभद्रके समयपर विचार करनेके पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि जैन साहित्य परम्परामें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिभद्र नामके कितने व्यक्ति हुए और इनमें 'समराइच्च कहा'के लेखक कथाकार कौनसे हरिभद्र हैं ? ईस्वी सन्‌की चौदहवीं शताब्दी तकके उपलब्ध जैन साहित्यमें हरिभद्र नामके आठ आचार्योंका उल्लेख मिलता है।[1] इन आठ आचार्योंमें 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' प्राकृत कथा-काव्यके लेखक आचार्य हरिभद्र सबसे प्राचीन हैं। ये 'भवविरहसूरि' और 'विरहांककवि' इन दो विशेषणोंसे प्रख्यात थे।

'कुवलय[2]माला'के रचयिता उद्योतन सूरिने (७०० शक) इन्हें अपना प्रमाण और न्याय पढ़ानेवाला गुरु कहा है। 'उपमितभवप्रपंच कथा'के रचयिता सिद्धर्षि (९०६ ई०) ने "धर्मबोधकरो गुरु"के रूपमें स्मरण किया है।

मुनि जिनविजयजीने अपने प्रबन्धमें लिखा है—"एतत्कथनमवलम्ब्यैव राजशेखरेण प्रबन्धकोषे मुनिसुन्दरेण उपदेशरत्नाकरे, रत्नशेखरेण च श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ, सिद्धर्षिहरिभद्रशिष्यत्वेन वर्णितः। एवं पडीवालगगच्छीयायामेकस्यां प्राकृतपट्टावल्यामपि सिद्धर्षिहरिभद्रयोः समसमयवर्त्तित्वलिखितं समुपलभ्यते"[3] इससे स्पष्ट है कि भवविरह हरिभद्र बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने स्वयं अपने आपको यामिनी महत्तराका पुत्र जिनमतानुसारी, जिनदत्ताचार्यका शिष्य कहा[4] है।

हरिभद्रके समयके सम्बन्धमें निम्नलिखित चार मान्यताएँ प्रसिद्ध हैं।

(१) परम्परा प्राप्त मान्यता—इसके अनुसार हरिभद्रका स्वर्गारोहणकाल विक्रम सं० ५८५ अर्थात् ई० सन् ५२७ माना जाता रहा[5] है।

(२) मुनि जिनविजयजीकी मान्यता—अन्तः और बाह्य प्रमाणोंके आधारपर इन्होंने ई० सन् ७०० तक आचार्य हरिभद्रका काल निर्णय किया[6] है।

(३) प्रो० के० बी० आभ्यंकरकी मान्यता—इस मान्यतामें आचार्य हरिभद्रका समय विक्रम संवत् ८००-९५० तक माना[7] है।

(४) पंडित महेन्द्रकुमारजीकी मान्यता—सिद्धिविनिश्चयकी प्रस्तावनामें पंडित महेन्द्रकुमारजीने आचार्य हरिभद्र का समय ई० सन् ७२० से ८१० तक माना है।

मुनि जिनविजयजीने आचार्य हरिभद्रके द्वारा उल्लिखित विद्वानोंकी नामावली दी है। इस नामावलीमें समयकी दृष्टिसे प्रमुख हैं धर्मकीर्ति, (६००-६५०), धर्मपाल (६३५ ई०), वाक्यपदीयके रचयिता भर्तृहरि (६००-६५० ई०), कुमारिल (६२० लगभग ७०० ई० तक), शुभगुप्त (६४० से ७०० ई० तक) और शान्तरक्षित (ई० ७०५-७३२)। इस नामावलीसे ज्ञात होता है कि हरिभद्रका समय ई० सन् ७०० के पहले नहीं होना चाहिये।

हरिभद्रके पूर्व समयकी सीमा ई० सन् ७ ० के आस-पास है। विक्रम संवत् ५८५ की पूर्व सीमा

---

१. अनेकान्त जयपताका, भाग २, भूमिका, पृ० ३०,
२. जो इच्छइ भव-विरहं भवविरहं को ण वंदए सुएषं समय-सम-सत्यगुरुणोसमरमियंका कहा जस्स ॥ कुवलयमाला, अनुच्छेद ६, पृ० ४,
३. हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः, पृ० ७,
४. आवश्यक सूत्र टीका प्रशस्ति भाग
५. पंचसए पणसीए·······धम्मरओ देउ मुख्खसु। प्रद्युम्न चरित, विचा० गा० ५३२.
६. हरिभद्रस्य समयनिर्णयः पृ० १७
७. विशविंशिकाकी प्रस्तावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं मानी जा सकती है। विचार सार प्रकरणमें आई हुई "पंचसए पणसीए" गाथाका अर्थ एच० ए० शाहने बताया है कि यहाँ विक्रय संवत्के स्थानपर गुप्त संवत्का ग्रहण होना चाहिए। गुप्त संवत् ५८५ का अर्थ ई० सन् ७८५ है। इस प्रकार हरिभद्रका स्वर्गारोहण काल ई० सन् ७८५ के लगभग आता है।

यतिवृषभकी 'तिलोयपण्णत्ति'के अनुसार वीर निर्वाण ४६१ वर्ष व्यतीत होनेपर शक नरेन्द्र (विक्रमादित्य) उत्पन्न हुआ। इस वंशके राज्यकालका मान २४१ वर्ष है और गुप्तोंके राज्यकालका प्रमाण २५५ वर्ष है। अतः ई० सन् १८५ या १८६ वर्षके लगभग गुप्त संवत्का आरम्भ हुआ होगा। इस गणनाके आधारपर मुनि जिनविजयजीने ई० सन् ७७० या ७७१ के आसपास हरिभद्रका समय माना है।

हरिभद्रके समयकी उत्तरी सीमाका निर्धारण 'कुवलयमाला'के रचयिता उद्योतन सूरिके उल्लेख द्वारा होता है। इन्होंने 'कुवलयमाला'की प्रशस्तिमें इस ग्रन्थकी समाप्ति शक संवत् ७०० बतलायी है और अपने गुरुका नाम हरिभद्र कहा है।[1]

उपमितिभव-प्रपञ्च कथाके रचयिता सिद्धर्षिने अपनी कथाकी प्रशस्तिमें आचार्य हरिभद्रको अपना गुरु बताया है।

विषं विनिर्धूय कुवासनामयं व्यचीचरद् यः कृपया मदाशये।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्रसूरये ॥[2]

अर्थात्—हरिभद्र सूरिने सिद्धर्षिके कुवासनामय मिथ्यात्व रूपी विषका नाश कर उन्हें अत्यन्त शक्तिशाली सुवासनामय ज्ञान प्रदान किया था, तथा उन्हींके लिये चैत्य वन्दन सूत्रकी ललितविस्तरा नामक वृत्तिकी रचना की थी। 'उपमितिभव प्रपंच कथा'के उल्लेखोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि हरिभद्र सूरि सिद्धर्षिके साक्षात् गुरु नहीं थे, बल्कि परम्परया गुरु थे।

प्रो० आभ्यंकरने इन्हें साक्षात् गुरु स्वीकार किया है। परन्तु मुनि जिनविजयजीने प्रशस्तिके 'अनागतं' शब्दके आधारपर परम्परा गुरु माना है। इनका अनुमान है कि आचार्य हरिभद्र विरचित 'ललित विस्तरा वृत्ति'के अध्ययनसे सिद्धर्षिका कुवासनामय विष दूर हुआ था। इसी कारण उन्होंने उक्त वृत्तिके रचयिताको 'धर्मबोधक गुरु'के रूपमें स्मरण किया है।

अतएव स्पष्ट है कि प्रो० आभ्यंकरने हरिभद्रको सिद्धर्षिका साक्षात् गुरु मानकर उनका समय विक्रम संवत् ८००-९५० माना है, वह प्रामाणिक नहीं है और न उनका यह कथन ही यथार्थ है कि 'कुवलयमाला'में उल्लिखित शक संवत् ही गुप्त संवत् है।

वस्तुतः आचार्य हरिभद्र शंकराचार्यके पूर्ववर्ती हैं। सामान्यतः सभी विद्वान् शंकराचार्यका समय ईस्वी सन् ७८८से८२० ई० तक मानते हैं। हरिभद्रने अपनेसे पूर्ववर्ती प्रायः सभी दार्शनिकोंका उल्लेख किया है। शंकराचार्यने जैन दर्शनके स्याद्वाद सिद्धान्त सप्तभंगी न्यायका खण्डन भी किया है। इनके नामका उल्लेख अथवा इनके द्वारा किये गये खण्डनमें प्रदत्त तर्कोंका प्रत्युत्तर सर्वतोमुखी प्रतिभावान् हरिभद्रने नहीं दिया। इसका स्पष्ट अर्थ है कि आचार्य हरिभद्र शंकराचार्यके उद्भवके पहले ही स्वर्गस्थ हो चुके थे।

प्रो० आभ्यंकरने हरिभद्रके ऊपर शंकराचार्यका प्रभाव बतलाया है और उन्हें शंकराचार्यका पश्चात्-

---

१. सो सिद्धंतेण गुरु जुत्ती-सत्थेहि जस्स हरिभद्दो। बहु सत्थ-गंथ-वित्थर पत्थारिय-पयड-सव्वत्थो ॥
कुवलयमाला, अनुच्छेद ४३०पृ० २८२

२. हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णयः —पृ० ६ पर उद्धृत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ती विद्वान् माननेका प्रस्ताव किया है[1]। पर हरिभद्रके दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थोंका आलोड़न करनेपर उक्त कथन निस्सार प्रतीत होता है।

स्वर्गीय न्यायाचार्य पंडित महेन्द्रकुमारजीने हरिभद्रके षड्दर्शन समुच्चय (श्लोक ३०) में जयन्तभट्टकी न्यायमंजरीके—

गर्भितगर्जितारंभनिर्भिन्नगिरिगह्वरा ।
रोलम्बगवलव्यालतमालमलिनत्विषः ॥
त्वंगत्तडिल्लतासंगपिशंगीतुंगविग्रहा ।
वृष्टिं व्यभिचरन्तीह नैवं प्रायाः पयोमुचः ॥[2]

इस पद्यके द्वितीय पादको जैसाका तैसा सम्मिलित कर लिया गया है और न्यायमंजरीका रचनाकाल ई० सन् ८००के लगभग है। अतएव हरिभद्रके समयकी सीमा ८१० ईस्वी तक रखनी होगी, तभी वे जयन्तकी न्यायमंजरीको देख सके होगें। हरिभद्रका जीवन लगभग ९० वर्षोंका था। अतः उनकी पूर्वावधि ई० सन् ७२०के लगभग होनी चाहिये।[3]

इस मतपर विचार करनेसे दो आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं। पहली तो यह है कि जयन्त ही न्याय-मंजरीके उक्त श्लोकके रचयिता हैं, यह सिद्ध नहीं होता। यतः उनके ग्रन्थमें अन्यान्य आचार्य और ग्रन्थोंके उद्धरण वर्तमान हैं। जायसवाल शोधसंस्थानके निदेशक श्री अनन्तलाल ठाकुर ने न्यायमंजरी सम्बन्धी अपने शोध-निबन्धमें सिद्ध किया है कि वाचस्पति मिश्रके गुरु त्रिलोचन थे और उन्होंने एक न्यायमंजरीकी रचना की थी। सम्भवतः जयन्तने भी उक्त श्लोक वहींसे लिया हो अथवा अन्य किसी पूर्वाचार्यका ऐसा कोई दूसरा न्याय ग्रन्थ रहा हो जिससे आचार्य हरिभ्रद सूरि और जयन्तभट्ट इन दोनोंने उक्त श्लोक लिया हो यह सम्भावना तब और भी बढ़ जाती है जब कुछ प्रकाशित तथ्योंसे जयन्तकी न्यायमंजरीका रचनाकाल ई० सन् ८००के स्थानपर ई० सन् ८९० आता है।[4]

जयन्तने अपनी न्याय मंजरीमें राजा अवन्ति वर्मन (ई० ८५६-८८३)के समकालीन ध्वनिकार और राजा शंकर वर्मन (ई० सन् ८८३-९०२) द्वारा अवैध घोषित की गयी 'नीलाम्बर वृत्ति'का उल्लेख किया है। इन प्रमाणोंको ध्यानमें रखकर जर्मन विद्वान् डा० हेकरने यह निष्कर्ष निकाला है कि शंकरवर्मनके राज्यकालमें लगभग ८९० ई०के आस-पास जब जयन्तभट्टने न्याय मंजरीकी रचना की होगी, तब वह ६० वर्षके वृद्ध पुरुष हो चुके होंगे।[5]

उपर्युक्त तथ्योंके प्रकाशमें स्वर्गीय पंडित महेन्द्रकुमारजीका यह मत कि जयन्तकी न्याय मंजरीकी रचना लगभग ८०० ई०के आस-पास हुई होगी; अप्रमाणित सिद्ध हो जाता है और इस अवस्थामें आचार्य हरिभद्रके कालकी उत्तरावधि प्रामाणिक नहीं ठहरती। अतएव हमारा मत है कि 'षड्दर्शन समुच्चय'में ग्रहण

---

१. विंशति विंशिका प्रस्तावना।
२. न्यायमंजरी विजयनगर संस्करण, पृ० १२९।
३. सिद्धिविनिश्चयटीकाकी प्रस्तावना, पृ० ५३-५४।
४ विहार रिसर्च सोसाइटी, जनरल सन् १९५५, चतुर्थ खंडमें श्री ठाकुरका निबन्ध।
५. न्याय मंजरी स्टडीज नामक निबन्ध पूना ओरियन्टलिस्ट (जनवरी अप्रिल १९५७) पृ० ७७ पर डा० एच० भरहरी द्वारा लिखित लेख तथा उस पर पादटिप्पण क्रमांक २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किये गये पद्यका स्रोत जयन्तकी 'न्यायमंजरी' नहीं अन्य कोई ग्रन्थ है, जहाँसे उक्त दोनों आचार्योंने पद्यको ग्रहण किया है।

हरिभद्रके समय निर्णयमें 'नयचक्र'के रचयिता मल्लवादीके समयका आधार भी ग्रहण किया जा सकता है। 'अनेकान्तजयपताका'की टीकामें मल्लवादीका निर्देश आया है। आचार्य श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने लिखा है—"मालूम होता है कि मल्लवादीने अपने नयचक्रमें पद-पदपर 'वाक्यपदीय' ग्रन्थका उपयोग ही नहीं किया, बल्कि उसके कर्त्ता भर्तृहरिका नामोल्लेख एवं उसके मतका खण्डन भी किया है। इन भर्तृहरिका समय इतिहासमें चीनी यात्री इत्सिगके यात्रा विवरणादिके अनुसार ई० सन् ६०० से ६५० तक माना जाता है, क्योंकि इत्सिगने जब सन् ६९२में अपना यात्रावृत्तान्त लिखा, तब भर्तृहरिका देहावसान हुए ४० वर्ष बीत चुके थे। ऐसी अवस्थामें मल्लवादीका समय ई० सन् की सातवीं शताब्दी या उसके पश्चात् ही माना जायेगा।"[१]

डा० पी० एल० वैद्यने न्यायावतारकी प्रस्तावनामें मल्लवादीके समयका निर्धारणकर यह सुझाव दिया है कि हरिभद्रका समय विक्रम संवत् ८८४के बाद नहीं हो सकता। आचार्य जुगलकिशोर मुख्तारने हरिभद्रके समय पर विचार करते हुए लिखा है—"आचार्य हरिभद्रके समय, संयत जीवन और उनके साहित्यिक कार्योंकी विशालताको देखते हुए उनकी आयुका अनुमान १०० वर्षके लगभग लगाया जा सकता है और वे मल्लवादीके समकालीन होनेके साथ-साथ 'कुवलयमाला'की रचनाके कितने ही वर्ष बाद तक जीवित रह सकते[२] हैं।"

उपर्युक्त समस्त विचारोंके प्रकाशमें हमारा अपना अभिमत यह है कि जब तक हरिभद्रके ऊपर शंकराचार्यका प्रभाव सिद्ध नहीं हो जाता है तब तक आचार्य हरिभद्रसूरिका समय शंकराचार्यके बाद नहीं माना जा सकता। अतः मुनि जिनविजयजीने हरिभद्रसूरिका समय ई० सन् ७७० माना है, वह भी पूर्णतः ग्राह्य नहीं है। इस मतके मान लेनेसे उद्योतनसूरिके साथ उनके गुरु शिष्यके सम्बन्धका निर्वाह हो जाता है, पर मल्लवादीके साथ सम्बन्ध घटित नहीं हो पाता। अतएव इनका समय ई० सन् ७३० से ई० सन् ८३० तक मान लेनेपर भी उद्योतनसूरिके साथ गुरु-शिष्यका सम्बन्ध सिद्ध होनेके साथ-साथ मल्लवादीके सम्बन्धका भी निर्वाह हो जाता है।

रचनाएँ

हरिभद्रकी रचनाएँ मुख्यतः दो वर्गोंमें विभक्त की जा सकती हैं।

१. आगम ग्रन्थों और पूर्वाचार्योंकी कृतियों पर टीकाएँ।

२. स्वरचित ग्रन्थ (क) सोपज्ञ टीका सहित (ख) सोपज्ञ टीका रहित।

हरिभद्रके ग्रन्थोंकी संख्या १४४० या १४४४ बतायी गयी है। अब तक इनके लगभग ५० ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं। हमें इनकी कथा काव्य प्रतिभा पर प्रकाश डालना है। अतएव समराइच्च कहा, धूर्ताख्यान एवं उनकी टीकाओंमें उपलब्ध लघुकथाओं पर ही विचार करना है। निश्चयतः राजस्थानका यह कथाकाव्य रचयिता अपनी इस विधामें संस्कृतके गद्यकार बाणभट्टसे रंचमात्र भी कम नहीं है। यदि इसे हम राजस्थानका बाणभट्ट कहें तो कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं। प्राकृत कथाकाव्यको नया स्थापत्य, नयी विचार-

---

१. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृ० ५५१-५५२।

२. जैन साहित्य इतिहास पर विशद प्रकाश, पृ० ५५३ का पाद टिप्पण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारा और नया रूप देनेके कारण अपने क्षेत्रमें हरिभद्र अद्वितीय हैं। हरिभद्रने स्थापत्योंको नया गठन दिया है। तरंगवतीमें पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ और कर्म विकास केवल कथाको प्रेरणा देते हैं, पर 'समराइच्च कहा'में पूर्व जन्मोंकी परम्पराका स्पष्टीकरण, शुभाशुभ कृतकर्मोंके फल और श्रोताओं या पाठकोंके समक्ष कुछ नैतिक सिद्धान्त भी उपस्थित किये गये हैं।

हरिभद्रके स्थापत्यकी मौलिकता

हरिभद्र मौलिक कथाकाव्यके रचयिता हैं। इन्होंने सर्वप्रथम काव्यके रूपमें कथावस्तुकी योजना की है। इनकी 'टेकनिक' बाणभट्टके तुल्य है। कलाके विभिन्न तथ्यों तथा उपकरणोंकी योजना अनुभूति और लक्ष्यकी एकतानताके रूपमें की है। जैसे कोई चित्रकार अपनी अनुभूतिको रेखाओं और विभिन्न रंगोंके आनुपातिक संयोगसे अभिव्यक्त करता है, अमूर्त्त अनुभूतिको मूर्त्तरूप देता है, उसी प्रकार कथाकाव्यका रचयिता भी भावोंको वहन करनेके लिए विभिन्न वातावरणोंमें पात्रोंकी अवतारणा करता है। आशय यह है कि निश्चित लक्ष्य अथवा एकान्त प्रमाणकी पूर्तिके लिए रचनामें एक विधानात्मक प्रक्रिया उपस्थित करनी पड़ती है, जिससे कथाकाव्य रचयिताका स्थापत्य महनीय बन जाता है। हरिभद्र ऐसे प्रथम कथाकार हैं, जिन्होंने सौन्दर्यका समावेश करते समय वस्तु और शिल्प दोनोंको समान महत्त्व दिया है। इनकी दृष्टिमें वस्तुकी अपेक्षा प्रकाश भंगी अभिव्यक्तिकी वक्रता अधिक आवश्यक है। अतः भाव विचार तो युग या व्यक्ति विशेषका नहीं होता, वह सार्वजनीन और सार्वकालिक ही होता है। नया युग और नये स्रष्टा उसे जिस कुशलतासे नियोजित करते हैं वही उनकी मौलिकता होती है।

अलंकारशास्त्रियोंने भी भावसे अधिक महत्त्व उसके प्रकाशनको दिया है। प्रकाशन प्रक्रियाको शैलीका नाम दिया जाता है। अतः जिसमें अनुभूति और लक्ष्यके साथ कथावस्तुकी योजना, चरित्रअवतारणा, परिवेशकल्पना, एवं भाव सघनताका यथोचित समवाय जितने अधिक रूपमें पाया जाता है, वह कथाकाव्य निर्माता उतना ही अधिक मौलिक माना जाता है।

हरिभद्रने 'समराइच्चकहा'में मौलिकता और काव्यात्मकताका समावेश करनेके लिए अलंकृत वर्णनोंके साथ कथोत्थप्ररोह, पूर्वदीप्ति प्रणाली, कालमिश्रण और अन्यापदेशिकताका समावेश किया है। कथोत्थप्ररोहसे तात्पर्य कथाओंके सघन जालसे है, जिस प्रकार केलेके स्तम्भकी परत एक पर दूसरी और दूसरीपर तीसरी आदि क्रमसे रहती हैं, उसी प्रकार एक कथापर उसकी उद्देश्यकी सिद्धि और स्पष्टताके लिए दूसरी कथा और दूसरीके लिए तीसरी कथा आदि क्रममें कथाएँ नियोजित की जाती हैं। हरिभद्रने वटप्ररोहके समान उपस्थित कथाओंमें संकेतात्मकता और प्रतीकात्मकताकी योजना की है। परिवेशों या परिवेश-मंडलोंका नियोजन भी जीवन और जगत्के विस्तारको नायक और खलनायकके चरित गठनके रूपमें उपस्थित किया है। रचनामें सम्पूर्ण इतिवृत्तको इस प्रकार सुविचारित ढंगसे नियोजित किया है, कि प्रत्येक खण्ड अथवा परिच्छेद अपने परिवेशमें प्रायः सम्पूर्ण-सा प्रतीत होता है और कथाकी समष्टि योजना-प्रवाहको उत्कर्षोन्मुख करती है। एक देश और कालकी परिमितिके भीतर और कुछ परिस्थितियोंकी संगतिमें मानव जीवनके तथ्योंकी अभिव्यञ्जना की जाती है। जिस प्रकार वृत्त कई अंशोंमें विभाजित किया जाता है और उन अंशोंकी पूरी परिधिमें वृत्तकी समग्रता प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार कथोत्थप्ररोहके आधारपर इतिवृत्तके समस्त रहस्य उद्घाटित हो जाते हैं। कथाकारकी मौलिकता वहीं समझी जाती है, जहाँ वह कथासूत्रोंको एक खूँटीपर टाँग देता है।

हरिभद्रने अपनी 'बीजधर्मा' कथाओंमें काव्यत्वका नियोजन पूर्वदीप्ति प्रणाली द्वारा किया है। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणालीमें पूर्वजन्मके क्रियाकलापोंकी जाति स्मरण द्वारा स्मृति कराकर कथाओंमें रसमत्ता उत्पन्न की जाती है। इस स्थापत्यकी विशेषता यह है कि कथाकार घटनाओंका वर्णन करते-करते अकस्मात् कथाप्रसंगके सूत्रको किसी विगत घटनाके सूत्रसे जोड़ देता है; जिससे कथाकी गति विकासकी ओर अग्रसर होती है। आधुनिक कथाकाव्यमें इसे 'फ्लैशबैक' पद्धतिका नाम दिया गया है।

हरिभद्रने घटनाओंको या किसी प्रमुख घटनाके मार्मिक वर्णनको कथाके गतिमान सूत्रके साथ छोड़ दिया है पश्चात् पिछले सूत्रको उठाकर किसी एक जीवन अथवा अनेक जन्मान्तरोंकी घटनाओंका स्मरण दिलाकर कथाके गतिमान सूत्रमें ऐसा धक्का लगाता है, जिससे कथा जाल लम्बे मैदानमें लुढ़कती हुई फुटबॉल के समान तेजीसे बढ़ जाता है। हरिभद्र इस सूत्रको देहली दीपक न्यायसे प्रस्तुत करते हैं, जिससे पूर्व और परवर्त्ती समस्त घटनाएँ आलोकित होकर रसमय बन जाती हैं।

हरिभद्रने किसी बात या तथ्यको स्वयं न कहकर व्यंग्य या अनुभूति द्वारा ही प्रकट किया है। व्यंग्य-की प्रधानता रहनेके कारण 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' इन दोनोंमें चमत्कारके साथ कथारस प्राप्त होता है। कथांश रहने पर व्यंग्य सहृदय पाठकको अपनी ओर आकृष्ट करता है। इस शिल्प द्वारा हरिभद्रने अपनी कृतियोंका निर्माण इस प्रकार किया है जिससे अन्य तत्त्वोंके रहनेपर भी प्रतिपाद्य व्यंग्य बनकर प्रस्तुत हुआ है। समुद्र यात्रामें तूफानसे जहाजका छिन्न-भिन्न हो जाना और नायक और उपनायकका किसी लकड़ी या पटरेके सहारे समुद्र पार कर जाना एक प्रतीक है। यह प्रतीक आरम्भमें विपत्ति, पश्चात् सम्मिलन-सुखकी अभिव्यञ्जना करता है। 'समराइच्चकहा'में अन्यापदेशिक शैलीका सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। प्रथम-भवमें राजा गुणसेनकी अपने महलके नीचे मुर्दा निकलनेसे विरक्ति दिखलायी गई है। यहाँ लेखकने संकेत द्वारा ही राजाको उपदेश दिया है। संसारकी असारताका अट्टहास इन्द्रजालके समान ऐन्द्रिय विषयोंकी नश्वरता एवं प्रत्येक प्राणीकी अनिवार्य मृत्युकी सूचना भी हरिभद्रने व्यंग्य द्वारा ही दी है। हरिभद्रने कार्य-कारण पद्धतिकी योजना भी इसी शैलीमें की है।

'समराइच्चकहा'की आधारभूत प्रवृत्ति प्रतिशोध भावना है। प्रधान कथामें यह प्रतिशोधकी भावना विभिन्न रूपोंमें व्यक्त हुई है। लेखकने इसे निदान कथा भी कहा है। अग्निशर्मा और गुणसेन ये दोनों नायक और प्रतिनायक हैं। गुणसेन नायक है और अग्निसेन प्रतिनायक। इन दोनोंके जन्म-जन्मान्तरकी यह कथा नौभवों तक चलती है। और गुणसेनके नौभवोंकी कथा ही इस कृतिके नौ अध्याय हैं। प्रत्येक भवकी कथा किसी विशेषस्थान, काल और क्रियाकी भूमिकामें अपना पट परिवर्तन करती है। जिस प्रकार नाटकमें पर्दा गिरकर या उठकर सम्पूर्ण वातावरणको बदल देता है, उसी प्रकार इस कथाकृतिमें एक जन्मकी कथा अगले जन्मकी कथाके आने पर अपना वातावरण, काल और स्थानको परिवर्तित कर देती है। सामान्यतः प्रत्येक भवकी कथा स्वतंत्र है। अपनेमें उसकी प्रभावान्विति नुकीली है। कथाकी प्रकाशमान चिनगारियाँ अपने भवमें ज्वलन कार्य करती हुई, अगले भवको आलोकित करती हैं। प्रत्येक भवकी कथामें स्वतंत्र रूपसे एक प्रकारकी नवीनता और स्फूर्तिका अनुभव होता है। कथाकी आद्यन्त गतिशील स्निग्धता और उत्कर्ष अपनेमें स्वतंत्र है।

स्थूल जाति और धार्मिक साधनाकी जीवन प्रक्रियाको कलाके आवरणमें रख जीवनके बाहरी और भीतरी सत्योंकी अवतारणाका प्रयास प्रथम भवकी कथाका प्रधान स्वर है। सहनशीलता और सद्भावनाके बलसे ही व्यक्तिके व्यक्तित्वका विकास होता है। धार्मिक परिवेशके महत्त्वपूर्ण दायित्वके प्रति इस कथाका रूप विन्यास दो तत्त्वोंसे संघटित है। कर्म-जन्मान्तरके संस्कार और हीनत्वकी भावनाके कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने विकारोंको इतर व्यक्तियोंपर आक्षिप्त करना। अग्निशर्मा अपने बचपनके संस्कार और उस समयमें उत्पन्न हुई हीनत्वकी भावनाके कारण गुणसेन द्वारा पारणाके भूल जानेसे क्रुद्ध हो निदान बाँधता है। गुणसेनका व्यक्तित्व गुणात्मक गुणवृद्धिके रूपमें और अग्निशर्माका व्यक्तित्व भागात्मक भागवृद्धिके रूपमें गतिमान और संघर्षशील है। इन दोनों व्यक्तित्वोंने कथानककी रूप रचनामें ऐसी अनेक मोड़ें उत्पन्न की हैं, जिनसे कार्य व्यापारकी एकता, परिपूर्णता एवं प्रारम्भ, मध्य और अन्तकी कथा योजनाको अनेक रूप और संतुलन मिलते गये हैं। यह कथा किसी व्यक्ति विशेषका इतिवृत्त मात्र ही नहीं, किन्तु जीवन्त चरित्रोंकी सृष्टिको मानवताकी ओर ले जाने वाली है। धार्मिक कथानकके चौखटेमें सजीव चरित्रोंको फिटकर कथाको प्राणवन्त बनाया गया है।

देश-कालके अनुरूप पात्रोंके धार्मिक और सामाजिक संस्कार घटनाको प्रधान नहीं होते देते—प्रधानता प्राप्त होती है, उनकी चरित्र निष्ठाको। घटनाप्रधान कथाओंमें जो सहज आकस्मिक और कार्यकी अनिश्चित गतिमत्ता आ जाती है, उससे निश्चित ही यह कथा संक्रमित नहीं है। सभी घटनाएँ कथ्य हैं और जीवनकी एक निश्चित शैलीमें वे व्यक्तिके भीतर और बाहर घटित होती हैं। घटनाओंके द्वारा मानव प्रकृतिका विश्लेषण और उसके द्वारा तत्कालीन सामन्त वर्गीय जनसमाज एवं उसकी रुचि तथा प्रवृत्तियोंका प्रकटीकरण इन कथाको देश-कालकी चेतनासे अभिभूत करता है। इसके अतिरिक्त गुणसेनकी समस्त भावनाओंमें उसका मानस चित्रित हुआ है। क्रोध, घृणा आदि मौलिक आधारभूत वृत्तियोंको उनकी रूप व्याप्ति और संस्थितिमें रखना हरिभद्रकी सूक्ष्म संवेदनात्मक पकड़का परिचायक है। धार्मिक जीवनमें भागीदार बननेकी चेतना गुणसेनकी वैयक्तिक नहीं सार्वजनीन है। हरिभद्रने चरित्रसृष्टि, घटनाक्रम और उद्देश्य इन तीनोंका एक साथ निर्वाह किया है। अग्निशर्माका हीनत्व भावकी अनुभूतिके कारण विरक्त हो जाना और वसंतपुरके उद्यानमें तपस्वियोंके बीच तापसीवृत्ति धारण कर उग्र तपश्चरण करना तथा गुणसेनका राजा हो जानेके पश्चात् आनन्द विहारके लिए वसंतपुरमें निर्मित विमानछन्दक राजप्रासादमें जाना और वहाँ अग्निशर्माको भोजनके लिए निमंत्रित करना तथा भोजन सम्पादनमें आकस्मिक अन्तराय आ जाना; आदि कथासूत्र उक्त तीनोंको समानरूपसे गतिशील बनाते हैं।

इस कथामें दो प्रतिरोधी चरित्रोंका अवास्तविक विरोधमूलक अध्ययन बड़ी सुन्दरतासे हुआ है। गुणसेनके चिढ़ानेसे अग्निशर्मा तपस्वी बनता है, पुनः गुणसेन घटना क्रमसे अग्निशर्माके सम्पर्कमें आता है। अनेक बार आहारका निमंत्रण देता है। परिस्थितियोंसे बाध्य होकर अपने संकल्पमें गुणसेन असफल हो जाता है। उसके मनमें अनेक प्रकारका पश्चात्ताप होता है। वह अपने प्रमादको धिक्कारता है। आत्मग्लानि उसके मनमें उत्पन्न होती है, कुलपतिसे जाकर क्षमा-याचना करता है। पर अन्ततः अग्निशर्मा उसे अपने पूर्व अपमानके क्रमकी कड़ी ही मानता है। ईर्ष्या, विद्वेष और प्रतिशोधसे तापसी जीवनको कलुषित कर गुणसेनसे बदला लेनेका संकल्प करता है। यहाँसे गुणसेनके चरित्रमें आरोहण और अग्निशर्माके चरित्रमें अवरोहणकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चरित्रोंके बिरोधमूलक तुलनात्मक विकासका यह क्रम कथामें अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंगसे नियोजित हुआ है।

चरित्र-स्थापत्यका उज्ज्वल निदर्शन अग्निशर्माका चरित्र है। अतः अग्निशर्माका तीन बार भोजनके आमन्त्रणमें भोजन न मिलनेपर शान्त रह जाना, उसे साधु अवश्य बनाता। वह परलोकका श्रेष्ठ अधिकारी होता, पर उसे उत्तेजित दिखलाये बिना कथामें उपचार वक्रता नहीं आ सकती थी। कथामें काव्यत्वका संयोजन करनेके लिए उसमें प्रतिशोधकी भावनाका उत्पन्न करना नितान्त आवश्यक था। साधारण स्वरका मानव जो मात्र सम्मानकी आकांक्षासे तपस्वी बनता है, तपस्वी होनेपर भी पूर्व विरोधियोंके प्रतिशोधकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावना निहित रहती है। उसका उत्तेजित होना और प्रतिशोधके लिए संकल्प कर लेना उसके चारित्रगत गुण ही माने जाएँगे।

द्वितीयादि सभी भवोंमें कथानक और उसका विन्यास ऋजुरूपमें हुआ है। कथाका कार्य एक विशेष प्रकारका रसबोध कराना माना जाय, तो यह कथा जीवनके यथार्थ स्वाभाविक पहलुओंके चित्रण द्वारा हमें विश्वासयुक्त रसग्रहणकी सामग्री देनी है। द्वितीय भवकी कथाका प्रारम्भ प्रेम प्रसंगकी गोपनीय मुद्रासे होता है। इस सम्पूर्ण कथा भागमें 'अहं' भावका सम्यक् चित्रण किया गया है। अन्तर्कथाके रूपमें अमरगुप्त आदिकी कथाएँ भी आई हैं।

तृतीय भवमें ज्वालिनी और शिखीकी कथाके प्रेरणा और पिण्ड भाव मूलतः जीवके उसी धातु विपर्यय और निदानके चलते हैं, जो इन धार्मिक कथाओंमें सर्वत्र अनुस्यूत है। मध्यकी कथा अजितकी है जो इसी मर्मकी घटनाओंकी परिपाटीके द्वारा उद्घारित करती है। कथा इस मर्मसे प्रकाशित होकर पुनः वापस लौट आती है और आगे बढ़ती है। आगे बढ़नेपर विरोधके तत्त्व आते हैं। और इस तरह गल्प-वृक्षके मूलसे लेकर स्कन्ध और शाखाओं तकके अन्तर्द्वन्द्वका फिर शमन होता है।

चतुर्थ भवमें धन और धनश्रीकी कथा है। इसका आरम्भ गार्हस्थिक जीवनके रम्य-दृश्यसे होता है। कथा-नायक धनका जन्म होता है और वयस्क होने पर अपने पूर्व भवके संस्कारोंसे आबद्ध धनश्रीको देखते ही वह उसे अपना प्रणय अर्पित कर देता है। धनश्री निदान कालुष्यके कारण अकारण ही उससे द्वेष करने लगती है। कथाकारने इस प्रकार एक ओर विशुद्ध आकर्षण और दूसरी ओर विशुद्ध विकर्षणका द्वन्द्व दिखलाकर कथाका विकास द्वन्द्वात्मक गतिसे दिखलाया है।

पञ्चम भवमें जय और विजयकी कथा अंकित है। इस भवकी कथामें मूल कथाकी अपेक्षा अवान्तर कथा अधिक विस्तृत है। सनतकुमारकी अवान्तर कथाने ही मूल कथाका स्थान ले लिया है। प्रेम, घृणा, द्वेष आदिकी अभिव्यञ्जना अत्यन्त सफल है। काव्यकी दृष्टिसे इस भवकी कथावस्तुमें शृंगार और करुण रसका समावेश बहुत ही सुन्दर रूपमें हुआ है।

षष्ठ भवमें धरण और लक्ष्मीकी कथा वर्णित है। गुणसेनकी आत्मा धरणके रूपमें और अग्निशर्माकी लक्ष्मीके रूपमें जन्म ग्रहण करती है। घटना बहुलता, कुतूहल और नाटकीय क्रम-विकासकी दृष्टिसे यह कथा बड़ी रोचक और आह्लादजनक है। कथाकी वास्तविक रञ्जन क्षमता उसके कथानक गुंफनमें है। स्वाभाविकता और प्रभावान्विति इस कथाके विशेष गुण हैं। पात्रोंमें गति और चारित्रिक चेतनाका सहज समन्वय इसकी जोरदार कथा-विद्याको प्रमाणित करता है। घटनाओंकी सम्बद्ध शृङ्खला और स्वाभाविक क्रमसे उनका ठीक-ठीक निर्वाह घटनाओंके माध्नमसे नाना भावोंका रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगोंका समावेश इस कथाको घटना, चरित्र, भाव और उद्देश्यकी एकता प्रदान करता है।

सप्तम भवमें सेन और विष्णुकुमारकी कथा निबद्ध है। उत्थानिकाके पश्चात् कथाका प्रारम्भ एक आश्चर्य और कौतूहलजनक घटनासे होता है। चित्रखचित मयूरका अपने रंग-बिरंगे पाँव फैलाकर नृत्य करने लगना और मूल्यवान हारका उगलना, अत्यन्त आश्चर्य-चकित करनेवाली घटना है। हरिभद्रने प्रबन्ध-वक्रताका समावेश इस भवकी कथामें किया है। गुणसेनका जीवसेनकुमार, उत्तरोत्तर पूतात्मा होता जाता है। और अग्निशर्माका जीव विषेणकुमार उत्तरोत्तर कलुषित कर्म करनेके कारण दुर्गतिका पात्र बनता जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार गुणसेनकी आत्माका पर्याप्त शुद्धीकरण हो जाता है। प्रतिद्वन्द्वी अग्निशर्मा वानमन्तर नामका विद्याधर होता है। और गुणसेन गुणचन्द्र नामका राजपुत्र। प्रथम भवकी कथामें जिन प्रवृत्तियोंका विकास प्रारम्भ हुआ था वे प्रवृत्तियाँ इस अष्टम भवकी कथामें क्रमशः पूर्णताकी ओर बढ़ती हैं। नवम भवकी कथा प्रवृत्ति और निवृत्तिके द्वन्द्वकी कथा है। समरादित्यका जहाँ तक चरित्र हैं, वहाँ तक संसार निवृत्ति है। और गिरिषेणका जहाँ तक चरित्र है, संसारको प्रवृत्ति है। समरादित्यका चरित्र वह सरल रेखा है, जिसपर समाधि, ध्यान और भावनाका त्रिभुज निर्मित किया जाता है। गिरिषेणका चरित्र वह पाषाण स्थल है, जिसपर शत्रुता, अकारण ईर्ष्या, हिंसा, प्रतिशोध, और निदानकी शिलाएँ खचित होकर पर्वतका गुरुतर रूप प्रदान करती हैं। इस प्रकार हरिभद्रने कथा, उपकथा और अवान्तर कथाके संघटन द्वारा अपने कथातन्त्रको सशक्त बनाया है। चरित्र, काव्य-रस और कथा-तत्त्वका अपूर्व संयोजन हुआ है।

भारतीय व्यंग्य काव्यका अनुपम रत्न धूर्त्ताख्यान है। मानव में जो बिम्ब या प्रतिमाएँ सन्निहित रहती हैं, उन्हीके आधारपर वह अपने आराध्य या उपास्य, देवी देवताओंके स्वरूप गढ़ता है। इन निर्धारित स्वरूपोंको अभिव्यञ्जना देनेके लिए पुराण एवं निजन्धरी कथाओंका सृजन होता है।

हरिभद्रने अपने इस कथा काव्यमें पुराणों और रामायण, महाभारत, जैसे महाकाव्योंमें पायी जाने वाली असंख्य कथाओं और दन्तकथाओंकी अप्राकृतिक, अवैज्ञानिक और अबौद्धिक मान्यताओं तथा प्रवृत्तियोंका कथाके माध्यमसे निराकरण किया है। वास्तविकता यह है कि असम्भव और दुर्घट बातोंकी कल्पनाएँ जीवनकी भूख नहीं मिटा सकती हैं। सांस्कृतिक क्षुधाकी शान्तिके लिए सम्भव और तर्कपूर्ण विचार ही उपयोगी होते हैं। अतएव हरिभद्रने व्यंग्य और सुझावोंके माध्यमसे असंभव और मनगढ़न्त बातोंको त्याग करनेका संकेत दिया है। कृतिका कथानक सरल है। पाँच धूर्तोंकी कथा गुम्फित है। प्रत्येक धूर्त, असंभव अबौद्धिक और काल्पनिक कथा कहता है, जिसका समर्थन दूसरा धूर्त साथी पौराणिक उदाहरणों द्वारा करता है। कथाओंमें आदिसे अन्त तक कुतूहल और व्यंग व्याप्त हैं।

हरिभद्र लघुकथाकार भी हैं। व्यक्तिके मानसमें नाना प्रकारके बिम्ब—इमेज रहते हैं। इनमें कुछ व्यंग्योंके आत्मगत बिम्ब भी होते हैं जो घटनाओं द्वारा बाहर व्यक्त होते हैं। प्रेम, क्रोध, घृणा, आदिके निश्चित बिम्ब हमारे मानसमें विद्यमान हैं। हम इन्हें भाषाके रूपमें जब बाहर प्रकट करते हैं तो ये बिम्ब लघुकथा बनकर प्रकट होते हैं। कलाकार उक्त प्रक्रिया द्वारा ही लघुकथाओंका निर्माण करता है। इसके लिये उसे कल्पना, सतर्कता, वास्तविक निरीक्षण, अभिप्राय ग्रहण, एवं मौलिक सृजनात्मक शक्तिकी आवश्यकता होती है। वस्तुतः हरिभद्र ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने बृहत् कथा-काव्योंके साथ-साथ लघु-कथाओंका भी निर्माण किया है। जीवन और जगत्से घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ चुनकर अद्‌भुत शिल्पका प्रदर्शन किया हैं। हरिभद्रकी शताधिक लघु-कथाओंको मानव प्रवृत्तियोंके आधारपर निम्नलिखित वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है। ये कथाएँ 'दशवैकालिक वृत्ति' और 'उपदेश पद'में पायी जाती हैं—

१. कार्य और घटना प्रधान, २. चरित्र प्रधान, ३. भावना और वृत्ति प्रधान, ४. व्यंग्य-प्रधान, ५. बुद्धि-चमत्कार प्रधान, ६. प्रतीकात्मक, ७. मनोरंजनात्मक, ८. नीति या उपदेशात्मक, ९. सौन्दर्य बोधक, १०. प्रेम-मूलक,

इस प्रकार हरिभद्र राजस्थानके ऐसे कथा-काव्यनिर्माता हैं, जिनसे कथा-काव्यके नये युगका आरम्भ होता है। इस युगको हम संघात युग कह सकते हैं। हरिभद्रने कथाओंके संभार और संगठनमें एक नयी दिशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपस्थित की है। शिल्प और कथ्य दोनों ही दृष्टियोंसे वे महनीय हैं। उनके पद-चिह्नोंका अनुसरण कुवलय-माला, सुरसुन्दरी चरियं, निर्वाणलीलावती आदिमें पाया जाता है। अतएव हम हरिभद्रको युग-संस्थापक युगप्रवर्तक कथा-काव्यनिर्माता मान सकते हैं। वस्तुतः वे बहुमुखी प्रतिभावान् कथारस और काव्य रसकी संगम प्रधान रचनाओंके लेखक हैं। इसे हम राजस्थानका सौभाग्य ही मानेंगे कि उसने बाणभट्टकी सम-कक्षता करने वाला अद्भुत कथा-काव्य निर्माता उत्पन्न किया। मैं हरिभद्रके चरण-चिह्नोंसे पवित्र हुई महा-राणा प्रतापकी वीर भूमि राजस्थानको शत-शत प्रणाम करता हूँ।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org